प्राचीन लोक प्रशासन में वैदिक साहित्य, स्मृतियाँ व अर्थशास्त्र की वर्तमान में प्रासंगिकता

***डॉ. ओम प्रकाश मीणा**

शोध सारांश

किसी भी विषय के वर्तमान स्वरूप को समझने के लिए उसके अतीत को समझना आवश्यक होता है। सैद्वान्तिक दृष्टि से यह अध्ययन के विषय को व्याप्क संदर्भ में स्थापित करने में सहायक होता है तथा व्यावहारिक दृष्टि से भूतकाल के ज्ञान का उपयोग वर्तमान में विषय के विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में सहायक होता है।

लोक प्रशासन उतना ही प्राचीन है जितना की मानव तथा मानव सभ्यता। अध्ययन शास्त्र की दृष्टि से इसका प्रवर्तन चाहे अधिक पुराना न हो किन्तु वास्तविक स्थितियों में इसका चलन व आवश्यकता मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही रही है। प्राचीन काल से ही भारत की शासन – पद्धति का इतिहास वैदिक काल से प्रारम्भ होकर सामान्यतः मुगल – शासन की स्थापना तक फैला हुआ है।

भारतीय लोक प्रशासन के विकास की लम्बी यात्रा में जहाँ अनेक प्रशासनिक संगठन बने और बिगड़े वहीं इसकी दो विशेषताएँ निरन्तर बनी रही।[1]

(क) प्रशासनिक संगठन की संरचना में प्रारम्भिक इकाई के रूप में ग्राम का महत्त्व

(ख) प्रशासनिक संगठन में केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्तियाँ।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारत का वर्तमान प्रशासन अपने अतीत की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का विकसित प्रतिरूप है। परम्परागत लोक प्रशासन को आधार मान कर ही वर्तमान लोक प्रशासन का निर्माण हुआ है। प्राचीन लोक प्रशासन तत्कालीन ग्रन्थों में संरक्षित है अतः वैदिक साहित्य, स्मृतियाँ, अर्थशास्त्र आदि ग्रन्थों में लोक प्रशासन के शैशव काल को देखा जा सकता है।

प्राचीन भारत में राज्य के प्रशासन की शक्तियाँ बहुत कुछ राजा के हाथ में केन्द्रित थी। वैदिक काल में राजा की सहायता के लिए अनेक अधिकारी हुआ करते थे। डॉ. बेनीप्रसाद के अनुसार राजा के चारों ओर उसके मित्रों व मुख्य अधिकारियों का घेरा रहता था। मनुस्मृति एवं शुक्रनीति में भी प्रशासनिक विभागों एवं अधिकारियों की जानकारी मिलती है। राज्य के कार्यालय का सर्वप्रथम उल्लेख हमें कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में मिलता है। इस समय तक प्रशासन – पद्धति का पर्याप्त विकास हो चुका था।[2] चन्द्रगुप्त और अशोक के शासन काल के समय में प्राचीन भारतीय प्रशासन पद्धति का विकास अपने चरम स्तर तक पहुँच गया था। अतः प्रशासनिक कार्यों का क्षेत्र भी व्यापक बन गया था। राज्य व्यक्ति के भौतिक एवं नैतिक समस्त पहलुओं से सम्बन्ध रखता था। इन कार्यों को सम्पन्न करने कि लिए अनेक कार्यालय बन गए और स्थानीय शासन का क्षेत्र विभाजित हो गया।

प्राचीन भारत में प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण का उल्लेख मिलता है। बड़े – बड़े साम्राज्य, प्रान्तों, जिलों, नगरों एवं ग्रामीण क्षेत्रों में विभाजित थे। प्रशासनिक दृष्टि से भी राज्यों को अनेक विभागों में वर्गीकृत किया गया। वैदिक काल

मे प्रशासन के विभाग संख्या में कम थे। धीरे – धीरे विभागों की संख्या में वृद्धि तथा उनका अधिकार क्षेत्र निर्धारित होता गया।

हरीश चन्द्र शर्मा के अनुसार – ''प्रशासन के एक ही विभाग में अनेक अधिकारी व कर्मचारी होते थे और इनके पद की योग्यताएँ, भर्ती, वेतन अवकाश एवं सेवा की अन्य शर्ते अलग – अलग प्रकार से निर्धारित की गई थी। प्रशासन के एक महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में एक सचिवालय होता था।[3] प्राचीन काल में विभिन्न समय में विभिन्न प्रकार के प्रशासन प्रचलित थे। सिंधु घाटी सभ्यता काल में प्रशासन के बारे में ज्ञान अधिकतर अनुमान पर आधारित है। खुदाई में प्राप्त अवशेषों से विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मोहनजोदड़ो और हड़प्पा साम्राज्य व्यवस्थित और सुशासित थे। सिन्धु घाटी की सभ्यता में सड़कों तथा नालियों की सुनियोजित व्यवस्था थी। इससे यह प्रतीत होता है कि नगरों में नगरपालिकाएँ थी जो नगरों की समुचित व्यवस्था करती थी।

सिन्धु घाटी सभ्यता के सम्पूर्ण क्षेत्र में एक ही प्रकार के भवनों का निर्माण होता था, एक ही माप – तौल प्रचलित थी, एक ही लिपि का प्रचलन था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सम्पूर्ण सिन्धु प्रदेश में एक ही विशाल साम्राज्य संगठित था। इस प्रदेश में एक संगठन, एक व्यवस्था तथा एक प्रशासन की सत्ता थी। मोहनजोदड़ो की शासन–व्यवस्था धर्मगुरूओं और पुरोहितो के हाथों में केंद्रित थी जो जनप्रतिनिधियों के रूप में प्रशासनिक कार्य करते थे।[4]

काल क्रम के अनुसार वैदिक साहित्य सबसे प्राचीन है। वेद तब की कृतियाँ है जब कागज एवं लिपि का अविष्कार ही नहीं हुआ था। वेद सुन–सुन कर आगे बढ़े अतः वेदों को 'श्रुति' भी कहा जाता है। वैदिक साहित्य के अन्तिम छोर सूत्र साहित्य में से धर्मसूत्रों का अनुसरण करते हुए स्मृति साहित्य का उदय हुआ। स्मृति में मुख्यतः राजा, राज्य व प्रजा के नियमों का निरूपण हुआ। अर्थशास्त्र, वैदिक साहित्य एवं स्मृतियों की तुलना में नवीनता है। अर्थशास्त्र, स्मृतियों तथा वैदिक साहित्य में वर्णित लोक प्रशासन का परिष्कृत रूप वर्तमान की प्रशासनिक व्यवस्था में देखा जा सकता है।

राजा की स्थिति एवं तत्सम्बन्धी सिद्धान्त

वैदिक साहित्य, स्मृतियाँ तथा अर्थशास्त्र में राजा की स्थितियाँ अलग –अलग प्रकार की रही है। वैदिक काल के प्रारम्भ में न तो राजा था तथा न ही उसकी आवश्यकता महसूस की गई किंतु कालान्तर में अच्छाई व बुराई में संघर्ष पैदा हुआ। जिसे ऋत व अनृत की लड़ाई कहा गया। जो जातियाँ वेदो के अनुकूल थी उन्हे ऋत कहा गया तथा जो जातियाँ वेद विरूद्ध थी उन्हे अनृत कहा गया। अनृतों के अत्याचार से जन सामान्य प्रताड़ित किया जाने लगा जिसके परिणाम स्वरूप सबके मन में राजा के होने की भावना ने जन्म लिया।

सभी लोगों में जो श्रेष्ठ था, सबका नेतृत्व कर सकता था तथा सबका संरक्षण करने में सक्षम था उसे सभी ने मिलकर राजा बनाया गया। राजा के निर्णय वेदों के अनुकूल होते थे राजा के प्रभुत्व को सभी ने स्वीकार किया।

स्मृतियाँ लौकिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के आचरण व राजा की स्थितियों को स्पष्ट करती है। राजा के गुणों का वर्णन करते हुए स्मृतियों में इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरूण चन्द्रमा और कुबेर जैसे गुणों से युक्त होना राजा के लिए अनिवार्य बताया है।

स्मृतिकाल में मनु राज्य की उत्पत्ति में दैवीय सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। कौटिल्य, मनु के दैवीय सिद्धान्त को न मानकर समझौता सिद्धान्त को मान्यता प्रदान करता है।

राजा पद की स्थापना के बाद राज्य के समुचित विकास व संरक्षण के लिए अनेक तरह की व्यवस्थाएँ बनाई गयी

जिसके परिणाम स्वरूप प्रशासन का प्रारम्भिक रूप अस्तित्व में आया।[5] काल क्रम के अनुसार वैदिक साहित्य प्राचीनतम है, स्मृति साहित्य वेदों के बाद की रचनाऐं है तथा अर्थशास्त्र नवीनतम रचना है। वैदिक साहित्य का मुख्य उददेश्य लोक प्रशासन नहीं है। स्मृतियों में लोक व्यवहार को दर्शाया गया है, जबकि अर्थशास्त्र प्रशासनिक व्यवस्थाओं पर प्रकाश डालने वाला अभूतपूर्व ग्रन्थ है।

वैदिक काल

वैदिक काल में प्रशासनिक संस्थाएँ अस्तित्व में आई, जिन्हे सभा और समिति कहा गया। सभा और समिति मिलकर प्रशासन सम्बन्धी कार्यों में राजा का सहयोग करती थी। प्रशासनिक व्यक्तियों में सर्वोच्य स्थान पुरोहित का होता था। पुरोहित के अतिरिक्त सेनानी, अभिषेचनीय राजा (युवराज), महिषी आदि व्यक्ति प्रमुख प्रशासनिक अधिकारी थे। इनके अतिरिक्त सूत, ग्रामणी, क्षतृ, संग्रहीत्र, भागदूह, अक्षावाप तथा गोविकर्त अन्य प्रशासनिक व्यक्ति थे। इन सभी को रत्नी कहा जाता था।

स्मृति काल

स्मृति काल में प्रशासनिक व्यवस्था वैदिक काल से अधिक सुदृढ़ हो गई। राजा की अवश्यकता, उसके अधिकार तथा उसकी व्यवस्थाओं का विस्तृत विवेचन स्मृति ग्रंथों में किया गया। समृतियों को राजा की सहायता करने वाले प्रशासनिक ग्रंथ कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। राजा के अधिकारों, राजा का आचरण तथा उससे जुड़े सभी सिद्धान्तों का निरूपण सभी स्मृतियों में किया गया है।

स्मृतियों में मनु स्मृति सर्वाधिक प्राचीन है तथा उसके बाद याज्ञवल्क्य स्मृति, गौतम, बृहस्पति आदि स्मृतियों का प्रादुर्भाव हुआ।

स्मृतियाँ लौकिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के आचरण व राजा की स्थितियों को स्पष्ट करती है। राजा के गुणों का वर्णन करते हुए स्मृतियों में इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरूण चन्द्रमा और कुबेर जैसे गुणों से युक्त होना राजा के लिए अनिवार्य बताया है।

स्मृतियों में राजा की उत्पत्ति दुष्टों को नियंत्रित करने के लिए, सुव्यवस्था के लिए मानी गई। राजा राष्ट्र विरोधी तत्वों का दमन करने में मुख्य भूमिका निभाता है। इसके साथ ही राजा के महत्त्व को वैदिक काल से भी अधिक बढ़ाया गया। राजा चाहे बालक हो तब भी वह सब के लिए पूजनीय माना जाता है। राजा में सभी देवताओं का वास बताकर उसे स्मृतियों में आदर का स्थान दिया गया।

अर्थशास्त्र

स्मृतियों में जहाँ राजा को अत्यन्त आदरणीय स्थान दिया गया वहीं अर्थशास्त्र के रचयिता कौटिल्य की मान्यता भिन्न है। कौटिल्य के अनुसार यदि राजा को अपने राष्ट्र की प्रशासनिक व्यवस्था सही रखनी है, सम्पूर्ण सुव्यवस्था रखनी है तो मात्र ईश्वर की सत्ता व अध्यात्म के सहारे काम नहीं चलेगा। इस कार्य के लिए राजा को स्वयं तपस्या करनी होगी। राजा का स्वयं का जीवन व चरित्र, प्रजा नहीं अपितु स्वयं निर्मित करना होगा जिससे प्रजा राजा का आदर करें व राजा की आज्ञा का उल्लघंन न हो।[6]

कौटिल्य ने यद्यपि राजा एवं राजपुत्रों को उद्देश्य मान कर अर्थशास्त्र को प्रतिपादित किया फिर भी वे सारे सिद्धान्त जन – सामान्य के लिए भी उपयोगी है। उसी प्रकार से आचरण किया जाए जिससे मानव का जीवन सुखमय हो सके। राजा के कर्त्तव्यों के साथ – साथ अमात्य, मन्त्री, पुरोहित आदि के कर्त्तव्यों का भी निर्देश किया गया है।

कारण यह है कि सभी के मिलकर कार्य करने से ही राज्य व्यवस्था सम्भव है, अकेला कोई भी व्यक्ति राज्य का संचालन नहीं कर सकता। उनकी शुद्धता भी आवश्यक है। संस्थाओं का संचालन करने वालों के परीक्षण के उपाय तथा अधिकारों का वर्णन अर्थशास्त्र में किया गया है।

प्रजा का राजा तथा राष्ट्र के प्रति किस प्रकार की भावना, आचरण तथा व्यवहार होना चाहिए, जिससे एक स्वस्थ सामाजिक वातावरण तैयार हो सके तथा समाज सुख – समृद्धि से युक्त हो। जब प्रजा सुखी है तो राजा भी सुखी है। अतः कौटिल्य कहते हैं कि राजा को सदा उद्योगशील होना चाहिए जिससे प्रजा भी उद्योगी होगी।

राजा की तपस्या बाल्यकाल से ही प्रारम्भ हो जाती है। उसे सभी प्रकार की शिक्षाएँ अपने गुरूजनों से ग्रहण करनी अनिवार्य बताई गई है।

वर्तमान में प्रासंगिकता–

(1.) वर्तमान में जहाँ भूमण्डलीकरण का दौर है वहाँ प्रशासनिक संस्था के सर्वोच्च व्यक्ति की शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए। भारत में प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर चूने जाने वाले अधिकारियों की निम्नतम योग्यता निर्धारित है तथा विभिन्न लोक सेवा आयोग द्वारा योग्यताओं की परीक्षा के उपरान्त ही पदासीन करना कौटिल्य का ही अनुसरण है। किन्तु भारतीय लोक प्रशासन में सर्वोच्च पद यथा राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, मुख्यमन्त्री इत्यादि पद जो कि वैदिक कालीन, स्मृतिकालीन व अर्थशास्त्र कालीन राजा के समकक्ष है। इन में न्यूनतम शैक्षिक योग्यता का निर्धारण न करना उचित प्रतीत नहीं होता। कई बार निरक्षर व्यक्ति को मंत्री का पद दिया जाता है जिसके नीचे अनेक शिक्षित प्रशासनिक अधिकारियों को कार्य करना पड़ता है। यह स्थिति चिन्ता जनक है। अर्थशास्त्र के अनुसार राजा का शिक्षित होना प्रथम अनिवार्यता है। तदनुसार शिक्षा से विनीत राजा ही सम्यक् प्रशासन चलाने में सक्षम हो सकता है।

(2.) वर्तमान में सर्वोपरि संविधान के अनुच्छेदों का गहन अध्ययन कर वर्तमान में अनेक राजनेता अपने स्वार्थों को ही परिपोषित कर रहे हैं। स्वयं सत्ता पर कैसे काबिज हो? कौन सा सांविधानिक अनुच्छेद अधिक लाभ दे सकता है? इसी भावना से राजनीति की जा रही है। वर्तमान प्रशासन में नैतिकता का सर्वथा अभाव होता जा रहा है। वर्तमान में 'गीता' जैसे पवित्र ग्रन्थों की कसमें खा कर नित नए घोटाले किए जा रहे हैं। ऐसी दशा में नैतिकता वैदिक कालीन भावनाओं से ही आ सकती है। राजा को नैतिकता का पाठ स्मृतियाँ ही पढ़ा सकती है। प्रशासन चलाने वाले व्यक्ति का चरित्र कैसे अच्छा बनाया जाए यह अर्थशास्त्र से सीखा जा सकता है।

भ्रष्ट अथवा स्वार्थ लोलुप व्यक्तियों को प्रशासनिक सेवा में आने का अधिकार अर्थशास्त्र नहीं देता। वह अनेक प्रकार की उपधाओं (उपायों) से मन्त्रियों की परीक्षा करता है। गलत व्यक्तियों को पदच्युत करने तथा दण्ड का विधान अर्थशास्त्र में किया गया है।

(3.) वर्तमान में भी राज्य प्राप्ति जनादेश से होती है। संविधान के अनुसार कोई भी व्यसक व्यक्ति जो भारत का नागरिक हो। निर्धारित आयु को पूरा करता हो, मानसिक रूप से परिपक्व हो, दिवालिया न हो आदि योग्यताएँ रखने वाला व्यक्ति राज्य अथवा देश की सत्ता प्राप्त कर सकता है। जनादेश ही सत्ता का रसास्वादन करा सकता है।

(4.) प्राचीन प्रशासनिक व्यवस्था के अनुसार ही वर्तमान में भारत में संसदीय प्रणाली को अपनाया गया है । राष्ट्रपति देश की नाममात्र की कार्यपालिका होती है, वास्तविक कार्यपालिका मत्रिपरिषद् होती है, जिसका

प्रधान, प्रधानमंत्री होता है। मंत्रिपरिषद् के सदस्य, लोक सभा एवं राज्यसभा के सदस्य होते हैं, जो जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं। देश का शासन सचांलन के लिए अखिल भारतीय सेवाएँ ,केन्द्रीय सेवाएँ एंव राज्य सेवाएँ होती है, जिनके चयनित सदस्य विभिन्न विभागों यथा गृह विभाग, वित्त विभाग विदेश विभाग, रक्षा विभाग, न्याय विभाग एंव अनेक अन्य विभागा में कार्य करतें हैं।

प्रशासन जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। कर्त्तव्य पालन नहीं करने वाले को दण्ड देने का विधान है।

वर्तमान में भी राष्ट्र में कार्यपालिका भारतीय प्रशासन का मुख्य स्तम्भ है। जिसमें अनेक संस्थाएँ व इकाइयाँ समाहित है।

(5.) प्राचीन भारतीय आचार्य मन्त्रिपरिष्द् में मन्त्रियों की संख्या के विषय में एकमत नहीं थे। इनमें कौटिल्य का मत व्यवहारिक प्रतीत होता है। कौटिल्य का मानना है कि मन्त्रिपरिष्द् में मन्त्रियों की नियुक्ति आवश्यकतानुसार की जानी चाहिए।

आधुनिक संसदीय शासन–व्यवस्था में भी सदस्य संख्या को निशिचित करने का यही सिद्धांत है। 91 वें संविधान संशोधन (2003) के अनुसार केंन्द्र तथा राज्य मंत्रिपरिषद् की सदस्य संख्या क्रमशः लोक सभा तथा विधान सभा की सदस्य संख्या का 15 प्रतिशत होगा, जहाँ सदन सदस्य संख्या 40–40 है वहाँ अधिकतम 12 होगी।

(6.) वर्तमान में भी प्रशासनिक पदों पर सेवा आयोगों द्वारा विभिन्न प्रकार की परीक्षाएँ व साक्षात्कार लेकर ही नियुक्तियाँ दी जाती है। प्रयास यही रहना चाहिए कि प्रशासनिक पदों पर योग्य व्यक्तियों की ही नियुक्ति हो जिस से प्रशासन लोक हितकारी बना रहे।

(7.) वर्तमान में भी सेना तथा युद्ध प्रणालियों का उद्देश्य शांति बनाए रखना है। अपनी सैन्य शक्ति को बढ़ाकर शत्रुराष्ट्रों के मनोबल को कमजोर करना अधिक रहता है। सभी देश युद्ध की अपेक्षा शांति बनाए रखना चाहते है जो कि मानवता के लिए व सभी के विकास के लिए उचित ही है।

(8) वित्त प्रशासन का महत्वपूर्ण अंग है। वह उसका जीवनाधार है। वित्त प्रशासनिक इन्जन का ईंधन है। पहले का परिचालन दूसरे के बिना असम्भव है। कोष की व्यवस्था करने वाला प्रमुख विभाग , वित्त विभाग होता है। वित विभाग ही संसद द्वारा स्वीकृत मदो के अनुसार ही जनता पर कर लगाकर राजकोष की व्यवस्था करता है और विभिन्न विभागों में बाँटता है। जनता के पैसों का दुरूपयोग न हो इसलिए खर्च करने वाले विभागों पर निगरानी रखने के लिए संसदीय समितियों के अलावा नियंत्रक एवं महालेखा परिक्षक के पद की भी व्यवस्था की गयी है, जो वित्तिय अनियमितता पर अपनी रिर्पोट संसद को सौंपता है।

(9.) वर्तमान में भी प्रत्येक राष्ट्र के अन्य राष्ट्रों से सही सम्बन्ध रखने के लिए दूतावास स्थापित किए गए हैं। दूतावास व दूत से संवाद रहने से अन्य राष्ट्रों से सम्बन्धों में मधुरता तो आती ही है साथ ही देशों के मध्य व्यापार आदि अनेक कार्यों में सरलता बनी रहती है। इन प्रक्रियाओं के साथ – साथ गुप्तचर संस्थाएँ, मित्र व शत्रु राष्ट्रों की गतिविधियों को जानने के लिए तथा राष्ट्र के भीतर की स्थितियों को जानने के लिए अनिवार्य है।

(10.) वर्तमान में न्यायपालिका भारतीय संविधान के अनुसार कार्य करती है। न्यायपालिका लोगों के मूल अधिकारों

की रक्षा करती है तथा संविधान के अनुसार बनी विधि से जनता को उचित न्याय दिलाती है।

वर्तमान विधि निर्माण में प्राचीन न्यायिक प्रशासन का महत्त्वपूर्ण योगदान है। प्राचीन न्याय परम्पराओं के अनुसार ही अनेक प्रकार के वादों का निस्तारण संभव हो पाता है।

***सह–आचार्य**
लोक प्रशासन विभाग
आयुक्तालय कॉलेज शिक्षा, राजस्थान,
जयपुर

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद – त्रिवेन्द्रम संस्कृत ग्रन्थमाला, त्रिवेन्द्रम, 1835, 7/35/14
2. उपर्युक्त, 7/37/4
3. उपर्युक्त, 7/97/9
4. बलदेव उपाध्याय : – वैदिक साहित्य, शारदा मन्दिर, वाराणसी, 1868, द्वितीय परिच्छेद, पृ.सं. 13
5. ऋग्वेद–त्रिवेन्द्रम संस्कृत ग्रन्थमाला, त्रिवेन्द्रम 1835, 3, 4, 5
6. गैरोला– वाचस्मृति, कौटिल्य अर्थशास्त्र, वाराणसी, चौकमम्भा,विद्या भवन,1972, पृ.सं. 24